क्या अडाणी का एनडीटीवी उस संस्था का वारिस हो सकेगा जिसने रवीश कुमार जैसा पत्रकार दिया?

एनडीटीवी पर चुनाव को कवर करने के दौरान मुझे एक भी अवसर याद नहीं है कि मुझे कुछ कहने और न कहने के संकेत दिया गया हो. मैं प्रणय रॉय से ऑफ स्क्रीन और ऑन-स्क्रीन असहमत था लेकिन इसमें कोई समस्या नहीं थी.

योगेन्द्र यादव

आखिर हम सब की आशंका लगी हुई थी कि ऐसी अनहोनी किसी ना किसी दिन होनी ही है और आखिर को आशंका सच निकली—रवीश कुमार का इस्तीफा हो गया. जिस एनडीटीवी को हमलोग जानते पहचानते आये हैं— यह उस एनडीटीवी के अंत की शुरुआत है.

जो लोग व्यापार-जगत और कारपोरेट लॉ को मेरी तुलना में कहीं ज्यादा बेहतर जानते-समझते हैं वे बेशक मेरी इस बात से सहमत नहीं होंगे. वे कह रहे हैं कि एनडीटीवी के कार्यकारी अध्यक्ष प्रणव रॉय और राधिका रॉय ने इस्तीफा नहीं दिया है. कहा जा रहा है कि दोनों ने फिलहाल एनडीटीवी की होल्डिंग कंपनी आरआरपीआर होल्डिंग प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक पद से इस्तीफा दिया है. दोनों कंपनी के सबसे बड़े शेयर-धारक बने रहेंगे और उनके लिए तमाम रास्ते खुले हुए हैं.

मगर राजनीति की एक बात मैं भी समझता हूं. और वह ये कि देश का सबसे ताकतवर आदमी अगर देश के सबसे अमीर आदमी के साथ खड़ा हो तो फिर कोई नियम-कानून आड़े नहीं आ सकता. एनडीटीवी का ब्रांडनेम बना रहेगा, एक धंधे के रूप में वह आगे भी फलता-फूलता नजर

आ सकता है लेकिन पिछले तीन दशकों से जिस एनडीटीवी को हमलोग जानते-पहचानते आए हैं, वह एनडीटीवी नहीं रहेगा.

जो लोग मीडिया की रीत-नीत को मुझसे बेहतर जानते हैं वे ध्यान दिला रहे हैं कि अडाणी ग्रुप के अध्यक्ष गौतम अडाणी ने जो नये डायरेक्टर नियुक्त किये हैं वे स्वतंत्र पत्रकार हैं. संजय पुगलिया के बारे में ये बात तो मैं खुद भी कहूंगा. उन्हें मैं पिछले बीस सालों से जानता हूं. वे एक अच्छे पत्रकार हैं और किसी भी कोने से देखें लेकिन उन्हें मोदी-भक्त नहीं कह सकते.

लेकिन, इन बातों का बस इतना ही मतलब निकलता है कि एनडीटीवी (बल्कि अब ए फॉर अडाणी के तर्ज पर एएनडीटीवी कहें तो ज्यादा ठीक होगा) में रातो-रात बदलाव नहीं आने जा रहा. हो सकता है कि जब तक आलाकमान से कोई आदेश नहीं आ जाता तब तक चैनल को उसकी छवि और दर्शकों के मन-मिजाज के अनुरूप ही काम करने दिया जाये. मुकेश अंबानी ने जब नेटवर्क18 का अधिग्रहण किया था तब बिल्कुल ऐसा ही हुआ था.

रवीश कुमार के इस्तीफे ने एनडीटीवी के संस्थापक राधिका रॉय और प्रणव रॉय की तुलना में लोगों का ध्यान कहीं ज्यादा खींचा तो इसे एनडीटीवी के काम और पहचना को मिली श्रद्धांजलि के रूप में देखा जाना चाहिए. बीते कुछ सालों में रवीश कुमार का शो एनडीटीवी के सिर्फ हिन्दी न्यूज़ चैनल का नहीं बल्कि पूरे ही चैनल का चेहरा बन चुका था.

कुछ समय पहले मैंने अपने इस कॉलम में लिखा था कि `रवीश कुमार की पत्रकारिता हमारे समय की सच्चाई की पीड़ा का एक वसीयतनामा है`. वे एक प्रतीक-पुरूष में बदल चुके हैं और यह उनकी पत्रकारिता की उत्कट अच्छाइयों की वजह से हुआ है. लेकिन साथ ही हमें रॉय दंपत्ति

के आत्म-विश्वास, संकल्प और स्वप्न को भी याद रखना चाहिए कि उन्होंने अपनी जगमग बैठकी के बाहर के दायरे के एक नौजवान को सहकर्मी के तौर पर चुना और उस मुकाम तक पहुंचने दिया कि अपनी ऊंचाई में वह आज उन दोनों से बड़ा जान पड़ता है. यह संस्थाओं को बनाने-चलाने की हिन्दुस्तानी रीति से एकदम उलट है. संस्थाओं के निर्माण का एक ठेठ हिन्दुस्तानी मॉडल है जिसे मैं `जान दूंगा-जान लूंगा` मॉडल कहता हूं.

इस मॉडल की खासियत है कि इसमें कोई व्यक्ति जी-जान लगाकर एक संस्था बनाता है, पूरी संस्था को अपनी जागीर समझ कर उसे अंगुलियों पर नचाता है और अपने निकलने से पहले संस्था की पूरी जीवन शक्ति को निचोड़ लेता है. राधिका रॉय और प्रणय रॉय ने इस मॉडल से हटकर चलने का साहस दिखाया.

उदारता और ईमानदारी का मॉडल

कुछ वैसे ही याद रह गया है जैसे कल ही की बात हो कि मैं पहले-पहल साल 1993 में किसी दिन एनडीटीवी के दफ्तर गया था. उस वक्त मैं विकासशील समाज अध्ययन पीठ(सीएसडीएस) में था और मुझे सेमिनार नाम की पत्रिका के चुनाव-केंद्रित एक विशेषांक के संपादन का न्योता मिला था. इस वक्त तक प्रणव रॉय की किताब (अशोक लाहिड़ी एवं डेविड बटलर के साथ संयुक्त रूप से लिखी हुई) ए कम्पेंडियम ऑन इंडियन इलेक्शन से प्रेरित होकर मैं राजनीतिक दर्शन की ऊंची अटारी से नीचे जमीनी सच्चाइयों की तरफ कदम बढ़ा चुका था और कुछ वैसे लेख लिखे थे जो आज की भाषा में सेफोलॉजी (चुनाव शास्त्र) विषय के अंतर्गत लिखे कहे जायेंगे.

मैं इस जुगत में लगा हुआ था कि पत्रिका के विशेषांक के लिए प्रणव रॉय का इंटरव्यू मिल जाये. दिल्ली के संभ्रांत और गणमान्य लोगों के दायरे में उस वक्त तक जिनसे मेरा नेह-नाता बना था उनमें एक नाम है तेजबीर सिंह का. शब्द के सटीक अर्थों में उन्हें उदारवादी अभिजन कहा जा सकता है. सेमिनार पत्रिका के संपादक तेजबीर सिंह ने आसानी से समय तय किया और हम W ब्लॉक, ग्रेटर कैलाश वाले एनडीटीवी के दफ्तर पहुंचे.

मुझे बस इतना याद रह गया है कि प्रणव रॉय ने सौजन्यता वश मुझसे पूछा कि आप क्या चाइनीज टी लेना चाहेंगे (तब मुझे नहीं पता था कि ऐसी भी कोई चीज हुआ करती है) और यह भी याद है कि वे मेरे प्रश्नों का उत्तर बड़े मनोयोग से दे रहे थे जबकि वे एक बड़ी हस्ती थे और मैं उस वक्त एक नामालूम सा नौजवान, उनका एक और फैन.

गुजरते सालों के दौरान मुझे कई दफे प्रणव रॉय के सान्निध्य का सौभाग्य मिला. साल 1996 के चुनाव के वोटों की गिनती का दिन मैं भूल नहीं सकता. मैंने दूरदर्शन पर एग्जिट-पोल के आधार पर चुनाव-परिणामों का पूर्वानुमान लगाया था. कारण चाहे जो भी रहा हो लेकिन मेरे इस पूर्वानुमान को प्रणव रॉय की टक्कर में देखा गया जबकि उस वक्त चुनावी पूर्वानुमान के मामले में प्रणव रॉय के नाम का डंका बजता था.

वोटों की गिनती के दिन जिन चंद राज्यों से रूझान आये उनमें एक था कर्नाटक और कर्नाटक की सीटों के बारे में हमने जो पूर्वानुमान लगाया था वह गलत निकला. शायद, वही एकमात्र राज्य था जिसके बारे में हमारे पूर्वानुमान सटीक नहीं निकले. चुस्त जुमले बोलने में माहिर स्व. जयपाल रेड्डी जैसे इसी के इंतजार में थे. उन्होंने तुरंत ही यह फिकरा कसा कि `एक्जिट पोल की तो पोल खुल गई.` चाहते तो प्रणव रॉय भी

एक्जिट-पोल के भंजन के इस सुर में अपना सुर मिला सकते थे या किंचित अनमने के भाव से चुप्पी बनाये रखते हुए जयपाल रेड्डी को वह सब कहने दे सकते थे जो उन्हें कहना था.

मैं तो अपने चुनावी पूर्वानुमान की तरफदारी करने के लिए वहां मौजूद नहीं था लेकिन जयपाल रेड्डी को बात के बीच में ही प्रणव रॉय ने टोका. बड़े दृढ़ स्वर में कहा कि ऐसे कच्चे फैसले सुनाने से परहेज कीजिए, दूसरे राज्यों से आ रहे चुनाव-परिणाम के उदाहरण देकर बताया कि हमारा चुनावी पूर्वानुमान कितना बेहतर है. तो, प्रणव रॉय ऐसे ही हैं : उदारता, ईमानदारी और गरिमा की प्रतिमूर्ति.

राधिका रॉय और प्रणय रॉय ने अपने व्यक्तित्व की इन निजी खूबियों को सांस्थानिक खूबियों की शक्ल में ढाला है. बीते तीन दशकों में मैंने एनडीटीवी को बाहर से भी देखा-परखा है और उसके भीतर का आदमी बनकर भी जाना है. एक दर्शक के रूप में मैं एनडीटीवी के समाचारों उस वक्त से देखता आ रहा हूं जब इसका वर्ल्ड दिस वीक नाम का कार्यक्रम प्रसारित हुआ करता था.

एनडीटीवी की मशहूर इलेक्शन-टीम के साथ काम करने का भी मुझे सौभाग्य हासिल हुआ है. बीच-बीच में मैंने एनडीटीवी के प्रतिस्पर्धियों (पहले आजतक के साथ फिर सीएनएन-आईबीएन के साथ) के साथ भी काम किया. और, आज एक ऐसा दौर है जब एनडीटीवी की न्यूज़ कवरेज में मेरे बारे में समाचार बनते हैं. ईमानदारी और संपादकीय स्तर पर स्वतंत्रता एनडीटीवी की पहचान है. चुनाव यानी सबसे संवेदनशील सियासी घटना की कवरेज के बीते इन सालों के दौरान मुझे याद नहीं कि कोई एक भी ऐसा अवसर आया हो जब एनडीटीवी की टीम ने मुझसे कहा हो या इशारतन ही जताया हो कि अमुक बात कहनी है या फिर अमुक बात नहीं कहनी है.

प्रणव रॉय से मैं असहमत होता हूं—ऐसा ऑनस्क्रीन भी होता है और ऑफ स्क्रीन भी. लेकिन ऐसी असहमति कभी काम करने में बाधा नहीं बनी. जब हम 2004 में एनडीए की हार के बारे में पूर्वानुमान लगाने में नाकाम रहे तो प्रणव रॉय स्टूडियो से बाहर आये और पूरे न्यूजरूम के सामने कहा कि `मुझसे गलती हुई है कि मैंने चुनाव-सर्वेक्षणों के सबूतों के विश्लेषण के आधार पर जो कुछ योगेन्द्र कह रहे थे, उस पर ध्यान नहीं दिया. मैं सोच भी नहीं सकता कि किसी चैनल का मालिक, संपादक या फिर कोई विद्वान ऐसा भी कर सकता है !

अभिजन, पेशेवर और लोकतांत्रिक भारत के मुहाफिज

जब मैं राधिका और प्रणव रॉय का नाम लेता हूं दो मेरा मतलब रॉय दंपत्ति की तरफ सहज संकेत करना भर नहीं होता. प्रणव रॉय न्यूज़ चैनल का चेहरा और आवाज बनकर उभरे तो मैंने यह भी देखा है कि इस चैनल के पीछे राधिका रॉय का दिमाग और जज्बा काम कर रहा था.

मैंने राधिका रॉय के बारे में कम लिखा है क्योंकि एनडीटीवी के साथ मेरा जुड़ाव मुख्य रूप से प्रणव रॉय की अगुवाई में काम करने वाली उसकी इलेक्शन टीम से रहा है. राधिका रॉय में पेशेवराना दायित्व-निर्वाह का भाव कूट-कूट कर भरा है, यही भाव एनडीटीवी की पहचान भी है और दुख की बात है कि पेशेवर दायित्व-निर्वाह की इसी भावना का भारत के ज्यादातर संस्थानों में अभाव है. अपनी संपादकीय सोच और रीति-नीति के मामले में ही नहीं बल्कि निर्माण के स्तर पर किसी कार्यक्रम की गुणवत्ता के मामले में भी एडीटीवी एक उदाहरण बनकर उभरा है. एनडीटीवी उन चंद टीवी चैनलों में है जो विजुअल्स (दृश्य

सामग्री) और ग्राफिक्स की अहमियत को जानते हैं. सिर्फ एनडीटीवी में ही आपको देखने को मिलता है कि आप स्टूडियो में बैठे हैं तो आपके साथ सहकर्मियों की पूरी की पूरी यानी कैमरापर्सन लेकर बैकरूम के प्रोड्यूसर तक एक ऐसी टोली है जिसमें सभी महिलाएं हैं.

पुरुषों की बहुतायत वाली हिन्दुस्तानी मीडिया और उसकी पुरुषवादी संस्कृति के बीच एनडीटीवी का ऐसा कर दिखाना कोई छोटी-मोटी उपलब्धि नहीं. लेकिन एनडीटीवी की जिस बात ने मुझे सबसे ज्यादा लुभाया वह है इस संस्था के गैर-संपादकीय कर्मियों की कार्य-संस्कृति. इस कार्य-संस्कृति में एनडीटीवी के सांस्थानिक मूल्यों की पूरी झलक देखने को मिल जाती है. अपने सांस्थानिक मूल्यों को एनडीटीवी के कर्मचारी अपने बर्ताव में किसी गहने की तरह पहनते है: ड्राइवर बड़ी शालीनता से गाड़ी चलाता हुआ आपको स्टूडियो तक ले जायेगा, ऑफिस अटेंडेंट बरताव में बहुत विनम्र मिलेगा लेकिन पिछलग्गू और चिपकू नहीं. और, सफाईकर्मी आपको करीने की पोशाक में मिलेंगे, उनके साथ लोग-बाग गरिमापूर्ण बरताव करते मिलेंगे.

बेशक, एनडीटीवी के भीतर भरपूर अंग्रेजियत और अभिजनवादी आग्रह मौजूद रहा है. एनडीटीवी में भारत के `बड़े घरों` के बच्चों का जमावड़ा देखा जाता है. जो ऐसे बड़े घरों के चश्म-ओ-चिराग नहीं जैसे कि रवीश कुमार और मैं, वे एनडीटीवी के इस अभिजात्य रूप पर कभी खीजते तो कभी हंसते रहे हैं. लेकिन ये बात कहनी होगी कि एनडीटीवी की अभिजन-मंडली अपनी योग्यता-प्रतिभा को स्वतःसिद्ध मानकर नहीं चलती थी. यह अभिजन-मंडली इस एहसास से काम करती थी कि हमारे समाज के सर्वश्रेष्ठ को हासिल और पेश करना उसकी जिम्मेवारी है.

सबसे अहम बात यह कि एनडीटीवी की अभिजन-मंडली उस संविधान की तरफदारी में खड़ी रही जो उसके पुरखों ने तैयार किया था और यह

मंडली लोकतांत्रिक तथा सेक्युलर भारत की हिफाजत के लिए कीमत चुकाने को तैयार थी. क्या नया एएनडीटीवी इस विरासत का वाहक बन पाएगा? क्या यह सवाल पूछने लायक भी है?